हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेय-मीमांसा

लाला कन्नोमल एम० ए० ।

हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेय-मीमांसा

(HERBERT SPENCER'S PHILOSOPHY OF THE KNOWABLE.)

लेखक

लाला कन्नोमल एम० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

प्रथम बार] १६१६ [मूल्य।)

सूची

हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेय-मीमांसा

[Herbert Spencer's Philosophy of The Knowable]

(१) ज्ञेय-मीमांसा के मूलाधार-नियम ।

संसार में जितने पदार्थ हैं उन सब के मूलाधार छः तत्त्व हैं—अर्थात् काल, आकाश, प्रकृति, गति, शक्ति और मन। संसार की कोई वस्तु—जड़ अथवा चेतन—ऐसी नहीं जो इन छः तत्त्वों के अन्तर्गत न हो।

अज्ञेय-मीमांसा-शीर्षक पिछले लेख में लिखा जा चुका है कि ये तत्त्व वास्तव में क्या हैं और इनके मूलकारण क्या हैं, इस बात का जानना हमारी बुद्धि की सीमा से परे है। हम किसी तरह नहीं जान सकते कि इन तत्त्वों का असली रूप क्या है। हमें केवल इनके कार्य्य (Effects) ही दिखाई देते

हैं। दूसरे शब्दों में इसे यों कह सकते हैं कि इनके कारण (Causes) अज्ञेय हैं, पर कार्य्य ज्ञेय अथवा दृश्य हैं। ये कार्य्य (Effects) दो प्रकार के हैं। एक तो वे जो ज्ञानेन्द्रियों—अर्थात् नाक, कान, नेत्र, जिह्वा और त्वचा द्वारा जाने जा सकते हैं; जैसे—पुष्प की सुगन्धि नाक से, पुष्प का रूप नेत्रों से, गाने की आवाज़ कान से, भोजन का स्वाद जिह्वा से, किसी वस्तु की दृढ़ता अथवा कोमलता स्पर्श से। दूसरे वे जो केवल स्मरण अथवा कल्पना-शक्ति द्वारा ही जाने जा सकते हैं; जैसे देखे हुए मनुष्य के रूप का स्मरण द्वारा ध्यान करना, अथवा कल्पना-शक्ति द्वारा किसी विशाल और अद्भुत भवन का मन में चित्र बनाना।

इन दोनों प्रकार के कार्य्यों में पहले प्रकार के कार्य्य दूसरे प्रकार के कार्य्यों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और दृढ़ हैं। इस लिए ये पहले कार्य्य स्पष्ट-दृश्य और दूसरे मन्द-दृश्य कहे जा सकते हैं। स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों का अनुभव पहले होता है, मन्द-दृश्य कार्य्यों का पीछे। अर्थात् पहले

स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों का अनुभव होता है पीछे मन्द दृश्य कार्य्यों का। क्योंकि जब तक किसी ने जिह्वा से किसी खाद्य का स्वाद नहीं लिया अथवा जब तक नासिका से पुष्प की सुगन्धि नहीं सूँघी तब तक इस खाद्य के स्वाद अथवा उस पुष्प की सुगन्धि का वह चिन्तन नहीं कर सकता।

किसी वस्तु का भाव मन में तभी उदित हो सकता है जब हमने उसे एक बार कभी प्रत्यक्ष देखा हो। इससे यह ज्ञात हुआ कि स्पष्ट-दृश्य कार्य्य आद्य हैं और मन्द-दृश्य कार्य्य उनके अनुगामी अथवा प्रतिबिम्ब-मात्र हैं। पहले कार्य्य ऐसे हैं कि यदि हम चाहें तो भी उन्हें प्रकट नहीं कर सकते; परन्तु दूसरे हमारी इच्छा के अधीन हैं। उदाहरण लीजिए—

देवदत्त का मित्र रामदत्त है। देवदत्त आगरे में और रामदत्त कानपुर में रहता है। जिस समय इच्छा हो उसी समय देवदत्त स्मरण-द्वारा रामदत्त का ध्यान मन में कर सकता है; परन्तु देवदत्त को शरीर-सहित रामदत्त का तभी साक्षात्कार होगा जब रामदत्त स्वयं देवदत्त के घर उपस्थित होगा।

केवल देवदत्त की इच्छा से ही रामदत्त शरीर-सहित उपस्थित नहीं हो सकता। इस उदाहरण में शरीर-सहित रामदत्त स्पष्ट-दृश्य कार्य्य है और उसके रूप का स्मरण द्वारा चित्र का चिन्तन मन्द-दृश्य कार्य्य। स्मरण करना हमारी इच्छा के अधीन है, पर जिसका स्मरण किया जाय उसकी उपस्थिति हमारी इच्छा के अधीन नहीं।

स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों को पदार्थ (Object), अजीव (Non-ego) अथवा अनात्मा (Not-self) कह कर व्यक्त करते हैं और मन्द-दृश्य कार्य्यों को ज्ञाता (Subject), जीव (Ego) अथवा आत्मा (Self) कह कर। सारांश यह कि एक अज्ञेय शक्ति तो मन्द-दृश्य कार्य्यों के रूप में दिखाई देती है और एक स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों के रूप में। क्योंकि बिना शक्ति-विधान के कोई पदार्थ दृश्य नहीं हो सकता। यदि शक्ति न हो तो कुछ भी दृश्य न हो। जब कुछ दृश्य ही न होगा तब स्पष्ट-दृश्य और मन्द-दृश्य कार्य्य कैसे होंगे? अतएव इन सब दृश्यों का मूलाधार कोई शक्ति अवश्य है।

अब हम पूर्वोक्त दृश्य कार्य्यों के सम्बन्ध में सत्यता का विवरण संक्षेपतः करते हैं—

सत्यता दो प्रकार की है—वास्तविक और व्यावहारिक। यह लिखा जा चुका है कि संसार के मूल-तत्त्व अर्थात् काल, आकाश, प्रकृति, गति, शक्ति और मन—अज्ञेय हैं—अर्थात् हम इनके कारण नहीं जान सकते। वास्तव में ये क्या पदार्थ हैं, कोई नहीं बता सकता; परन्तु व्यवहार में ये कैसे दिखाई देते हैं, यह विषय हमारी बुद्धि-परिधि के अन्तर्गत है। अर्थात्—बुद्धि द्वारा हम इसे जान सकते हैं। अतएव हम यह नहीं बता सकते कि संसार की वास्तविक सत्यता कैसी है। हाँ, हम उसकी व्याव-हारिक सत्यता का विचार कर सकते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि संसार हमारे लिए वास्तविक सत्य नहीं; वह व्यावहारिक सत्य है। इस व्यावहारिक सत्यता के भी दो भेद हैं। एक स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों की व्यावहारिक सत्यता, दूसरी मन्द-दृश्य कार्य्यों की व्यावहारिक सत्यता। देवदत्त यहाँ उपस्थित है; मैं उसे देख रहा हूँ। देव-

दत्त यहाँ उपस्थित नहीं है; परन्तु स्मरण द्वारा—कल्पना द्वारा—मैं उसे सामने उपस्थित देखता हूँ। इन वाक्यों में से पहले वाक्य में स्पष्ट-दृश्य-कार्य्य-सम्बन्धिनी व्यावहारिक सत्यता है और दूसरे में मन्द-दृश्य-कार्य्य-सम्बन्धिनी सत्यता। पहले वाक्य की सत्यता में सन्देह नहीं। इस लिए व्यावहारिक दृष्टि से उसे वास्तविक सत्यता कहना चाहिए और दूसरे वाक्य की सत्यता को कल्पित सत्यता अथवा अस-त्यता कहना चाहिए। इससे यह अनुमान हुआ कि वस्तुओं के सत्य मानने में उनकी दृढ़ और अटल स्थिति ही उनकी सत्यता का प्रमाण है। जिसमें यह लक्षण हो वह सत्य और जिसमें यह न हो वह असत्य है।

अब यह बताना है कि मीमांसा किसे कहते हैं और ज्ञेय-मीमांसा के मूलाधार नियम क्या हैं। मीमांसा अथवा दर्शन-शास्त्र उसे कहते हैं जिसमें सारे व्यापक नियमों का विवरण हो। अतएव ज्ञेय-मीमांसा वह है जिसमें उन वस्तुओं के सम्पूर्ण व्यापक नियमों का विवरण हो जिन्हें हम जान सकते हैं।

हम पहले ही कह आये हैं कि जो संसार के मूलाधार तत्त्व हैं उनके कारण जानना हमारी बुद्धि की सीमा से परे है। इस लिए उन कारणों का जानना ज्ञेय-मीमांसा का विषय नहीं। हम ऊपर यह भी लिख आये हैं कि इन कारणों के जो कार्य्य हैं वे दृश्य हैं और जाने जा सकते हैं, तथा ये दृश्य-कार्य्य दो प्रकार के हैं—(१) स्पष्ट-दृश्य और (२) मन्ददृश्य। ये दोनों प्रकार के दृश्यकार्य्य ही ज्ञेय-मीमांसा के मूलाधार हैं।

(२) वैज्ञानिक तत्त्वोपलब्धि।

अज्ञेय-मीमांसा में हम लिख आये हैं कि बुद्धि के विचार अन्योन्य-सम्बन्ध द्वारा ही होते हैं। विना इन सम्बन्धों के न तो बुद्धि-विचार ही हो सकता है और न किसी वस्तु का ज्ञान ही हो सकता है। जब एक वस्तु की तुलना दूसरी वस्तुओं से की जाती है तभी उसका ज्ञान होता है। जो सम्बन्ध बुद्धि-विचार को विकसित करते हैं वे मुख्यतः दो प्रकार के हैं। आनुपूर्व्य सम्बन्ध (Relation of Se-

quence) दूसरे सहवर्त्ती-सम्बन्ध (Relation of Co-existences)—उदाहरण लीजिए।

(१) रामचन्द्र जी का जन्म हुआ।

(२) रामचन्द्रजी का सीताजी से विवाह हुआ।

(३) रामचन्द्र जी चौदह वर्ष वन में रहे।

(४) रामचन्द्र जी रावण को मार कर अयोध्या को लौट आये।

(५) रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हुआ।

इन पाँचों वाक्यों में पूर्वापर-सम्बन्ध है। पहले वाक्य की घटना के पश्चात् दूसरे वाक्य की घटना, दूसरे के पश्चात् तीसरे की, तीसरे के पश्चात् चौथे की और चौथे के पश्चात् पाँचवें वाक्य की घटना है। यदि अन्तिम वाक्य का विचार ध्यानपूर्वक किया जाय तो हम यह कह सकते हैं कि जो घटना चौथे वाक्य में है वह पाँचवें वाक्य की घटना के पहले और तीसरे वाक्य की घटना चौथे वाक्य के पहले की है। इस तरह विचार करने से पहले वाक्य की घटना, सब वाक्यों की घटनाओं से पहले की होगी।

जिन सम्बन्धों में इस प्रकार पूर्वापर घटनायें हों वे आनुपूर्व्य सम्बन्ध हैं।

एक कमरे में दो मेज़ें, चार कुर्सियाँ, दो आलमारियाँ, पचास पुस्तकें इत्यादि रक्खी हैं। इन चीज़ों में पूर्वापर-सम्बन्ध नहीं, किन्तु सहवर्ती-सम्बन्ध है: क्योंकि सब चीज़ें एक स्थान में एक सी स्थिति वाली हैं। यह नहीं कह सकते कि ये पहले हैं और ये पीछे। पहले उदाहरण में तो यह बात थी कि जो घटना पहले वाक्य में हो चुकी थी, उसके पीछे दूसरे वाक्य की घटना हुई। आगे के वाक्यों की भी यही बात है। एक ही साथ, एक ही काल में, बिना पूर्वापर-सम्बन्ध के इन सब घटनाओं का होना विचार-शक्ति के बाहर है। दूसरे उदाहरण में सब वस्तुओं का, एकही स्थान में, एक ही साथ होना प्रत्यक्ष दृष्ट है।

इससे ज्ञात होता है कि इन दोनों सम्बन्धों के रूप पृथक् पृथक् हैं। रूप-भिन्नता होने पर भी सहवर्ती-सम्बन्ध आनुपूर्व्य-सम्बन्धों के अनुभव से बना है। इस लिए आनुपूर्व्य-सम्बन्ध असली है.

श्रोर सहवर्ती-सम्बन्ध दूसरे सम्बन्धों से निकला हुआ है। आनुपूर्व्य-सम्बन्ध ज्ञान-अवस्था के प्रत्येक परिवर्तन में, प्रत्येक श्रेणी में, होता है; परन्तु सहवर्ती-सम्बन्ध ज्ञान-अवस्था-भेद में आदि से नहीं, क्योंकि अवस्थायें पूर्वापर-क्रम से होती हैं। यह सम्बन्ध उस समय उत्पन्न होता है जब अनुभव करते करते ऐसे आनुपूर्व्य-सम्बन्ध मालूम हो जाते हैं जो ज्ञानावस्था में अपने दोनों छोरों में एक ही से हों अर्थात् जिनमें आगे पीछे होने वाली घटनायें न हों। जिनमें ऐसी घटनायें हों वे आनुपूर्व्य-सम्बन्ध हैं श्रोर जिनमें ऐसी घटनायें न हों वे सहवर्ती-सम्बन्ध हैं। मन में प्रतिक्षण जो जो भाव उदय होते रहते हैं उनमें दोनों तरह के सम्बन्ध रहते हैं। अनुभव करते करते दोनों का अन्तर मालूम होने लगता है श्रोर दोनों सम्बन्धों के सार-रूप का ज्ञान हो जाता है। सहवर्ती-सम्बन्धों के सार-रूप का नाम आकाश है। मन में आनुपूर्व्यता श्रोर काल का एक सा चिन्तन होना, तथा सहवर्तिता श्रोर आकाश का एक सा चिन्तन होना, इस बात का प्रमाण

नहीं कि काल और आकाश बुद्धि के वास्तविक रूप हैं। इससे तो यही समझा जाता है कि जैसे दूसरे व्यापक विचारों के साररूप दूसरी विचार-सामग्री से उत्पन्न होते हैं वैसे ही ये भी उत्पन्न होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इनके विषय में अनुभव-क्रिया उसी काल से बढ़ती चली आई है, अर्थात् इनका अनुभव तभी से किया जा सकता है जब से बुद्धि का विकाश हुआ है। इस सिद्धान्त का समर्थन व्यवच्छेद-नय से भी होता है। हमें आकाश का जो ज्ञान होता है वह केवल सह-वर्ती स्थानों ही का ज्ञान है। यदि हम आकाश की कल्पना करना चाहें तो इस तरह कर सकते हैं। आकाश के किसी स्थान—किसी भाग—को हम ऐसी सीमाओं से घेरें जो आपस में विशेष सम्बन्ध रखती हों और जो सहवर्ती हों। ये सीमायें चाहे रेखायें हों चाहे धरातल हों, जब तक सहवर्ती न होंगी तब तक इनकी कल्पना न हो सकेगी। ये आकाश-रूप बनाने वाली सीमायें सहवर्ती जड़ वस्तुयें हैं। इनमें वस्तुत्व कुछ भी नहीं; वस्तु.

का नाम-मात्र ही इनमें है। यह कल्पना वस्तुत्व-रहित सहवर्ती-वस्तुओं का सारभूत-रूप है। इसकी उत्पत्ति उन अनेक अनुभवों के संयोग से हुई है जो बुद्धि-विकाश के समय से अब तक होते आये हैं। इस आकाश के ज्ञान के लिए सबसे पहले वस्तुओं को स्पर्श करना चाहिए। यह पहला साधन है। किसी वस्तु के स्पर्श से दो बातों का अनुभव होता है। एक तो उस वस्तु की प्रतिरोधता (Resistance) का, दूसरे उसकी स्नायु-सम्बन्धी वितति (Muscular-tension) का। वस्तु की स्नायु-सम्बन्धिनी वितति प्रति-रोधता के ग्रहण करने में आवश्यक है। अनेक प्रकार के स्नायु-सम्बन्धी समाधानों (Muscular Adjustments) से, जिनमें विविध प्रकार के स्नायु-सम्बन्धी प्रसरणों (Muscular Tensions) की आवश्यकता पड़ती है, अनेक प्रकार के प्रतिरोधक पदार्थों का ज्ञान होता है। जब ऐसी स्थिति वाले पदार्थों का ज्ञान हो जिनमें कोई भी पूर्वापर-सम्बन्ध नहीं, तब उन पदार्थों को सहवर्ती समझिए।

यदि स्नायु-सम्बन्धी समाधानों का संयोग प्रतिरोध करने वाली वस्तुओं से न हो तो उन वस्तुओं का ज्ञान तो होता है, परन्तु उनकी प्रति-रोधता का अनुभव नहीं होता। अर्थात् यह ज्ञान ऐसी सहवर्ती वस्तुओं का होता है जिनमें वस्तुत्व कुछ भी नहीं; केवल उनका रूप ही रूप है। ऐसे ज्ञानानुभवों के सार-रूप का नाम आकाश है।

यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि जिन अनुभवों के द्वारा आकाश का ज्ञान होता है वे सब शक्ति के ही अनुभव हैं। स्नायुसम्बन्धिनी शक्ति के प्रयोग से किसी वस्तु के स्थान का संकेत होता है। जब उस वस्तु की प्रतिरोधता का अनुभव होता है तभी यह ज्ञान होता है कि उस स्थान में कोई वस्तु है। प्रतिरोधता का यह अनुभव हमारी स्नायु-सम्बन्धिनी शक्ति के प्रयोग के बराबर है। अतएव आकाश का ज्ञान उन शक्ति-प्रयोगों से उत्पन्न होता है जो आपस में अनेक प्रकार के सम्बन्ध रखते हैं।

अच्छा, अब यह बात तो सिद्ध हो गई कि

आकाश का ज्ञान अन्योन्य-सम्बन्धी (Relative) है; परन्तु यह बताना शेष है कि वह चीज़ है क्या जिसका ज्ञान होता है। क्या आकाश स्वतन्त्र रूप से स्थित है, जिससे इस अन्योन्य-सम्बन्धी आकाश का ज्ञान होता है? इस प्रश्न का उत्तर देना असम्भव है। आकाश का जो ज्ञान होता है वह किसी अज्ञेय कारण की अवस्था से उत्पन्न होता है। आकाश का ज्ञान अमिट है; एवं जो कार्य्य अज्ञेय कारण से हुआ है वह भी अमिट है। इससे यह न समझना चाहिए कि अज्ञेय कारण का यह आवश्यक कार्य्य है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि आकाश एक अन्योन्य-सम्बन्ध रखने वाली, अर्थात् व्यावहारिक (Relative) सत्यता है। व्यावहारिक दृष्टि से यह सत्यता अटल और अचल है। और वैज्ञानिक तथ्यों के निर्णय करने में यह मानी जा सकती है। इससे कितने ही सांसारिक नियम जाने जा सकते हैं।

जिस तर्क-शैली से आकाश का ज्ञान सिद्ध हुआ उसीसे काल का ज्ञान भी सिद्ध हो सकता

है। काल भी व्यावहारिक सत्य (Relative Reality) है, वास्तविक सत्य (Real Reality) नहीं। परन्तु यह व्यावहारिक सत्यता भी वैसी ही अटल और निरन्तर है जैसी कि आकाश की सत्यता है। अतएव इस सत्यता को मानने से भी बहुत से वैज्ञानिक विचारों की सिद्धि को लाभ पहुँच सकता है—बहुत से विज्ञान-सम्बन्धी प्रश्न हल हो सकते हैं।

प्रकृति (MATTER)

आकाश का ज्ञान उन सहवर्ती वस्तुओं का ज्ञान है जिनमें प्रतिरोधता का लक्षण नहीं पाया जाता और प्रकृति का ज्ञान उन सहवर्तिनी वस्तुओं का ज्ञान है जिनमें प्रतिरोधता का लक्षण पाया जाता है। चाहे किसी भी वस्तु को ले लीजिए उसके अवलोकन से मालूम हो जायगा कि वह वस्तु प्रतिरोधता के लक्षण वाले तत्वों से सीमा-बद्ध है और उसके सब अंश ऐसे हैं जिनमें प्रति-रोधता का लक्षण विद्यमान है। यदि उससे सहवर्ती

प्रतिरोधता-लक्षण निकाल दिये जायँ तो वह वस्तु लोप हो जायगी; केवल आकाश-ज्ञान ही बाक़ी रह जायगा।

सहवर्ती-प्रतिरोध करने वाली वस्तुओं के सङ्घट्ट से प्रतिरोधता का अनुभव होता है। इस बात की आवश्यकता नहीं कि हम उस वस्तु के किसी विशेष भाग को छुवें तभी ऐसा अनुभव हो। हम उसके किसी भी भाग को क्यों न छुवें, वैसा अनुभव अवश्यही होता है।

हम जो अनेक प्रकार के स्नायु-सम्बन्धी समाधान करते हैं उनसे अनेक प्रकार की सहवर्ती वस्तुओं का बोध होता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि हम प्रकृति के प्रत्येक भाग में एक से अधिक प्रतिरोध करने वाली वस्तुओं का अनुभव करते हैं अर्थात् उन्हें आकाश को व्याप्त करते देखते हैं। इससे प्रकृति के अन्तिम लक्षण, विस्तृति और प्रतिरोधता का पता लगता है। प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में भी ये दो लक्षण पाये जाते हैं। इन लक्षणों के परे हमारी बुद्धि की गति ही नहीं।

इनमें प्रतिरोधता मुख्य और विस्तार गौण हैं; क्योंकि प्रतिरोधता के कारण ही प्रकृति और आकाश का भेद मालूम होता है। यदि यह लक्षण न हो तो केवल आकाश का रूप ही रह जाय; वह प्रकृति न रहे। इसके अतिरिक्त, हमें जो अनुभव पहले होता है वह प्रतिरोधता का ही होता है, विस्तार का नहीं। विस्तार का बोध प्रतिरोधता के अनुभवों के प्रयोग से होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आदि में शक्ति के ही अनुभव होते हैं और वही प्रकृति के ज्ञान के आधार हैं।

प्रकृति, हमारी ज्ञानावस्था में, शक्ति के रूप में वर्तमान रहती है। इसलिए वह हमारी स्नायु-सम्बन्धिनी चेष्टाओं (Muscular Exertions) की प्रतिकूलता करती है। अनुभवों के योग से मालूम होता है कि प्रकृति आकाश को व्याप्त कर रही है। मतलब यह कि प्रकृति ऐसी ही शक्तियों की बनी हुई है जो कोई न कोई विशेष सहवर्ती सम्बन्ध रखती हैं। प्रकृति का यह ज्ञान उसकी व्यावहारिक सत्यता का ज्ञान है। उसकी वास्तविक सत्यता के

विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस ज्ञान के विषय में हम यही कह सकते हैं कि यह किसी अज्ञेय कारण का अवस्थान्तर है; यह वास्तविक सत्यता नहीं। तथापि यह सत्यता इतनी अटल है कि संसार के सारे कार्य्य इसी से चल सकते हैं और इसे मानने से बहुत से उपयोगी नियमें का आविष्कार हो सकता है।

गति (MOTION)

गति के ज्ञान में काल, आकाश, और प्रकृति इन तीनें के ज्ञान का समावेश है। क्योंकि गति का ज्ञान होने के लिए सबसे पहले तो कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिए जो चलती हो; दूसरे, आकाश विद्यमान होना चाहिए, जिसमें वह चले; तीसरे, समय भी विद्यमान होना चाहिए, जो उस वस्तु के एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में आवश्यक है। अर्थात् काल, आकाश और प्रकृति का ज्ञान हुए बिना गति का ज्ञान नहीं हो सकता। हम ऊपर लिख आये हैं कि इन तीनें का—काल आकाश और प्रकृति का—ज्ञान

शक्ति के अनुभव-विषयक समाधानों से ही होता है। अतएव गति का ज्ञान भी शक्ति के ही अनुभव से होता है। इस ज्ञान में पहले शरीर के भिन्न भिन्न भागों की वे गतियाँ मालूम होती हैं जिनमें आपस में कोई सम्बन्ध होता है। ये गतियाँ स्नायु-सम्बन्धिनी चेष्टाओं से उत्पन्न होती हैं और स्नायु-सम्बन्धिनी वितति के भावों के रूप में बुद्धि-ज्ञान में दिखाई देती हैं।

इसलिए किसी भी अवयव का प्रसरण अथवा सङ्कोचन उस अवयव के घूमने की गति के अनुसार, पहले पहले ही, स्नायु-सम्बन्धिनी विततियों के माला-रूप में, मालूम होता है। गति का यह आरम्भिक बोध, जो शक्ति के अनुभवों की एक माला है, आकाश और काल के बोध के साथ दृढ़तापूर्वक मिल जाता है। अथवा यों कहिए कि गति का परिपक्व बोध, प्रारम्भिक बोध के समय, आकाश और काल के बोध के परिपक्व होने के समय ही हो जाता है।

यह गति का बोध व्यावहारिक सत्यता है। अत-

एव इससे यह बात ज्ञात होती है कि इसकी वास्तविक सत्यता भी कुछ न कुछ अवश्य होगी। परन्तु इसके विषय में कुछ कहना हमारी बुद्धि के परे है। कोई न कोई अज्ञेय कारण अवश्य है जिसका कार्य गति के रूप में दिखाई देता है।

शक्ति (FORCE)

काल, आकाश, प्रकृति और गति—इन सब का आधार शक्ति है। प्रकृति और गति अनेक प्रकार के मानसिक सम्बन्धों के मेल से बनी हैं और इन सम्बन्धों के रूप-सार से आकाश और काल बने हैं। इन सम्बधों के परे शक्ति के प्रारम्भिक अनुभव हैं। कोई भी चेतन भूत, जिसमें मानसिक कल्पनायें न होती हों, शक्ति का अनुभव कर सकता है। ऐसे दो एक अनुभवों से उसमें बोध का विकाश (Consciousness) नहीं हो सकता; परन्तु जब किसी वस्तु में अनेक मिले हुए, तथा विविध-प्रकार और जाति के, अनुभव होते हैं तब उसमें सम्बन्ध-समाधान अथवा बोध-विकाश की सामग्री उत्पन्न

हो जाती है। यदि इन सम्बन्धों के रूपों और उनकी जातियों में भिन्नता होती है तो ऐसे रूपों और जातियों के अनुभव एकही साथ होते हैं।

ज्ञान का सम्बन्ध परिवर्तन-श्रेणी से है। इस लिए जो बुद्धि का आधार है वह कोई ऐसी वस्तु है जिसका रूप परिवर्तनशील है। वह वस्तु शक्ति के सिवा और कुछ नहीं। अतएव सबका मूलाधार शक्ति है। यह शक्ति अवस्थारहित कारण का अवस्था-सहित कार्य है। इसकी सत्यता केवल व्यावहारिक है; उसी से वास्तविक सत्यता की सूचना होती है। परन्तु इस वास्तविक सत्यता के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। क्योंकि उसका ज्ञान हमारी बुद्धि की सीमा के परे है। सारांश यह कि बुद्धिविचार सम्बन्धों के ज्ञान द्वारा होता है। सम्बन्धों का ज्ञान बुद्धि की अवस्था के परिवर्तन से होता है। बुद्धि की अवस्था का परिवर्तन, शक्ति के आविर्भाव से होता है। जिन सम्बन्धों में पूर्वापर-सम्बन्ध होता है वे आनुपूर्व्य-सम्बन्ध कहाते हैं। जिनमें पूर्वापर-सम्बन्ध नहीं होता वे सहवर्ती-सम्बन्ध कहाते हैं।

विचार-विकाश में ये दोनों ही सम्बन्ध अत्यावश्यक हैं। आनुपूर्व्य-सम्बन्धों के ज्ञान के साररूप का नाम काल है और सहवर्ती-सम्बन्धों के ज्ञान के सार-रूप का नाम आकाश। आनुपूर्व्य-सम्बन्धों का अनुभव करते करते सहवर्ती-सम्बन्धों का ज्ञान होता है तब वे आनुपूर्व्य-सम्बन्ध उनमें इस तरह मिल जाते हैं कि उन्हें दोनों सिरों से देखने पर यह नहीं ज्ञात होता कि कौन सम्बन्ध पहले और कौन पीछे उत्पन्न हुए हैं। जो भाव मन में उत्पन्न हुआ करते हैं उनमें दोनों तरह के सम्बन्ध मिले रहते हैं। पर अनुभव करते करते उनका अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगता है। निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा आकाश का ज्ञान होता है—

किसी वस्तु को स्पर्श करो। स्पर्श से दो बातों का अनुभव होता है। पहले उस वस्तु की प्रतिरोधकता मालूम होती है, फिर उस प्रतिरोधकता को ग्रहण करने में हमने अपने जिस स्नायु-सम्बन्ध का प्रसरण किया है वह मालूम होता है। स्नायु-सम्बन्धी प्रयत्न करते करते जब ऐसी स्थितिवाले पदार्थों का

ज्ञान हो, जिनमें कोई पूर्वापर-सम्बन्ध नहीं तो उन पदार्थों को सहवर्ती कहते हैं। यदि ये सहवर्ती पदार्थ ऐसे हों जिनमें प्रतिरोधकता का लक्षण नहीं तो उन्हें आकाश समझना चाहिए। यदि उनमें प्रतिरोधकता का लक्षण हो तो उन्हें प्रकृति के रूप समझिए।

प्रकृति के मुख्य लक्षण प्रतिरोधकता और विस्तार हैं। अकाश का लक्षण केवल विस्तार है। स्नायु-सम्बन्धी प्रयत्नों से पहले प्रतिरोधकता का अनुभव होता है; फिर इन अनुभवों के प्रयोग से विस्तार का ज्ञान होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रकृति की ज्ञान-प्राप्ति में भी शक्ति का अनुभव सबसे पहला और मुख्य अनुभव है।

इस लिए प्रकृति को ऐसी शक्तियों की बनी हुई कहना चाहिए जिनमें कुछ विशेष सहवर्ती सम्बन्ध हों। गति के ज्ञान में काल, आकाश और प्रकृति तीनों का ज्ञान समाविष्ट रहता है। प्रकृतिं और गति, मानसिक सम्बन्धों के मिश्रण से बनी है; और आकाश तथा काल इन सम्बन्धों के रूप-

सार से बने हैं। इन सब सम्बन्धों के परे शक्ति का आविर्भाव है। अर्थात् सब का आधार शक्ति ही है। यदि शक्ति का विकाश न हो तो किसी भी वस्तु का ज्ञान न हो। जिस वस्तु का ज्ञान हम कर सकते हैं, अन्त में उसे शक्ति का ही विकाश मानना पड़ता है।

(३) वैज्ञानिक तत्त्वों के व्यापक नियम।

काल, आकाश, प्रकृति, गति और शक्ति, ये वैज्ञानिक तत्त्व हैं। इनका वास्तविक अस्तित्व (Real Existence) कैसा है, यह जानना हमारी बुद्धि के परे है। इनका व्यावहारिक अस्तित्व (Phenomenal Existence) कैसा है और इनका ज्ञान कैसे होता है, यह सब हम पहले ही लिख आये हैं। अब इन तत्त्वों से सम्बन्ध रखनेवाले व्यापक नियमों का निरूपण सुनिए—

इन पाँच तत्त्वों में से काल और आकाश के विषय में पहले ही लिखा जा चुका है। अतएव अवशिष्ट तीन ही तत्त्वों के नियम बताना है।

प्रकृति का नियम ।

किसी भी प्राकृतिक वस्तु का अभाव नहीं हो सकता, अर्थात् प्रकृति का नाश नहीं (Matter is Indestructible)—वह अक्षय है। प्रकृति का रूपान्तर अवश्य होता है; परन्तु उसका सर्वथा क्षय अथवा अत्यन्ताभाव होना असम्भव है।

प्राचीन काल में मनुष्यों का विश्वास था कि प्राकृतिक वस्तुयें सर्वथा नष्ट हो जाती हैं। अर्थात् उनका नितान्त अभाव हो जाता है। उनका यह भी ख़याल था कि सृष्टि नई होती है। उसकी उत्पत्ति समय समय पर हुआ करती है। विज्ञान के प्रचार से इस विश्वास का अब लोप-सा हो गया है। पुच्छल तारा (Comet) कभी कभी आकाश में अकस्मात् दिखाई देने लगता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी कोई नवीन स्टष्टि हुई है—उसका पुनर्जन्म हुआ है। बात यह है कि पहले वह छिपा हुआ था, अतएव हमारी दृष्टि की आड़ में था। पर अब घूमते घूमते वह हमारी दृष्टि के सामने आ गया है। जो पानी भाफ़

के रूप में होकर दृष्टि से लोप हो जाता है, अर्थात् जो दिखाई नहीं देता, वह वैज्ञानिक साधनों द्वारा फिर पानी के रूप में लाया जा सकता है। वर्षा का जल वही है जो पहले भाफ बन कर हमारी दृष्टि की ओट में हो गया था। मोमबत्ती जलते जलते लुप्त हो जाती है। पर वह अपने परमाणुओं के रूप में अक्षय रहती है। यह न समझना चाहिए कि उसका सर्वथा नाश हो गया है। उसके परमाणु तो वैसे ही वर्तमान रहते हैं—वे तो वैसे ही ज्यों के त्यों बने रहते हैं; उनका रूपान्तर मात्र हो जाता है। रसायन-शास्त्र (Chemistry) के प्रचार से इस सम्बन्ध में मनुष्यों का ज्ञान बहुत अधिक परिष्कृत हो गया है। अब तो यह नियम अखण्डनीय माना जाता है। इस बात के सिद्ध करने में कि प्रकृति का नाश नहीं होता, आरम्भ में बिना प्रमाणों के ही, यह सिद्धान्त मान लेना होगा। क्योंकि प्रकृति को अक्षय सिद्ध करने के लिए जो प्रमाण दिये जायँगे उनमें यह बात पहले ही से मान ली गई है। इन प्रमाणों में से तोलना (Weighing) मुख्य प्रमाण है; परन्तु तोलने के बाँट

(Weights) प्रकृति के बने हुए हैं और यदि उनके एक से रहने में विश्वास न किया जाय तो तोलने की क्रिया भी व्यर्थही सिद्ध हो जाय। यदि प्रकृति के अंश एक से न होते तो तपाने और गलाने पर सोना नष्ट हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता। उसका एक भी परमाणु कम नहीं होता। इसी तरह रुपयों की तोल लोहे के बांटों से होती है और तोल से यह निश्चय हो जाता है कि रुपयों की संख्या ठीक है। ऐसे कितने ही उदाहरण और भी हैं जिनसे प्रकृति की अक्षयता सिद्ध होती है।

गति के नियम।

गति के तीन नियम हैं:—

(१) गति में विराम नहीं है (Motion is Continuous) अर्थात् गति रुकती नहीं—ठहरती नहीं; वह निरन्तर होती रहती है। यदि ऐसा नियम न होता तो सवितृ-मण्डल (Solar System) में नक्षत्रों और तारकाओं की गति रुक जाती; अतएव प्रलय की नौबत आ जाती।

(२) गति तीन तरफ़ होती हैः—

(अ) जिस तरफ़ सबसे कम रुकावट होती है, (Motion along the line of least resistance)

(ब) जिस ओर सबसे अधिक खिँचाव होता है (Motion along the line of greatest traction)

(क) जिस तरफ़ पूर्वोक्त दोनों कारणों का मध्य-स्थान होता है (Motion along the resultant of the tractions & resistances)

आकर्षण (Attraction) और प्रत्याकर्षण (Repulsion) से सम्बन्ध रखने वाली शक्तियों के कारण गति की दिशा (Direction) का नियमन होता है। जहाँ आकर्षण-शक्ति प्रधान होती है वहाँ गति उस तरफ़ होती है जिस तरफ़ सबसे अधिक खिँचाव होता है; जैसे—आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से वृक्ष के फल का पृथ्वी की तरफ़ खिँच कर गिरना। जहाँ प्रत्याकर्षण-शक्ति प्रधान होती है वहाँ गति उस तरफ़ होती है जिस तरफ़ सबसे कम रुकावट होती है; जैसे—धुवें का ऊपर जाना। जहाँ दोनों शक्तियों का प्रयोग एक दूसरे के प्रति-

कूल होता है वहाँ गति उस तरफ़ होती है जिस तरफ़ इन दोनों शक्तियों का मध्य-स्थान होता है। वास्तव में यह तीसरा नियम ही मुख्य है। व्यवहार में आकर्षण-शक्ति की प्रधानता देख पड़ती है। उसके मुक़ाबले में प्रत्याकर्षण-शक्ति बहुत कम दिखाई देती है। वृक्ष से फल गिरने में पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की प्रधानता है। पर यह न समझना चाहिए कि यहाँ प्रत्याकर्षण-शक्ति है ही नहीं। वायु आदि कारणों से फल पर प्रत्याकर्षण-शक्ति का प्रभाव भी पड़ता है; परन्तु पृथ्वी के आकर्षण की इतनी अधिकता है कि प्रत्याकर्षण का प्रभाव नहीं के बराबर हो जाता है। एंजिन (Engine) से निकल कर जो धुवाँ आकाश की ओर जाता है उस पर भी पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का प्रभाव पड़ता है; परन्तु उस पर प्रत्याकर्षण-शक्ति का प्रभाव इतना अधिक है कि आकर्षण-शक्ति नहीं के बराबर है। इसी कारण धुवें को ऊपर जाने में कोई रुकावट नहीं होतीं। किसी एक तरफ़ प्रारम्भ हुई गति उसी तरफ़ अधिक गति उत्पन्न करने का कारण हो जाती है। क्योंकि

उसी तरफ़ उसकी अत्यधिक शक्ति का आविर्भाव होता है—उसी तरफ़ उसे अनुकूल शक्ति प्राप्त होती है। प्राकृतिक गति से सम्बन्ध रखने वाले इस नियम के नियामक आकाश, प्रकृति अथवा वायु-तत्त्व हैं। भौतिक ज्योतिष-शास्त्र (Physical Astronomy) में, आकाश-द्वारा प्रकृति की गति के नियम का उदाहरण मिलता है; पदार्थ-विद्या (Physics) में प्रकृति-द्वारा प्रकृति की गति के नियम का पता लगता है और शक्ति-सम्बन्धी शास्त्र (Dynamics) में वायु-द्वारा प्रकृति की गति के नियम का उदाहरण देखा जाता है।

(३) गति में लय है (The Rhythm of Motion) इसका एक उदाहरण लीजिए। घड़ी के लटकन को देखिए। वह पहले एक तरफ़ जाता है, फिर दूसरी तरफ़। इस तरह दोनों छोरों के बीच में एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ और दूसरी तरफ़ से पहली तरफ़ वह चलता ही रहता है।

वृक्षों की पत्तियाँ, खेतों में अन्न की बालें, किनारे पर जल की लहरें—ये भी इसी चाल के

उदाहरण हैं। गति का यही स्वाभाविक रूप है। अर्थात् वह लय-विशिष्ट (Rhythm) है।

ऊपर कहे गये गति के नियम संसार में सर्वत्र पाये जाते हैं। सवितृ-मण्डल (Solar System) में, वायु-मण्डल (Atmosphere) में, जीव-धारियों (Organisms) में, मानसिक भावों (Mental Phenomena) में, सामाजिक घटनाओं (Social Changes) में—सभी में इन नियमों का होना पाया जाता है। इनके अनेक उदाहरण हैं। उन्हें लिखने से यह लेख बहुत बढ़ जायगा। अतएव यहाँ पर ये नियम सूत्ररूप में ही बता दिये गये हैं।

शक्ति के नियम।

शक्ति दो प्रकार की है—व्यक्त (Active-Energy) और अव्यक्त (Dormant-Force)। व्यक्त शक्ति परिवर्त्तन-कारिणी है, अव्यक्त-शक्ति परिवर्त्तन-कारिणी नहीं। लकड़ी में जलने की शक्ति रहती है। जब तक वह अव्यक्त है, लकड़ी नहीं जलती। जब वह व्यक्त होती है तब लकड़ी जलने लगती है।

दोनों प्रकार की शक्तियाँ निरन्तर स्थिति वाली हैं। यह नहीं हो सकता कि शक्ति कभी न रहे। शक्ति का अभाव नहीं हो सकता। जिस प्रतिरोधकता (Resistance) का अनुभव हमें पहले होता है वही शक्ति-सूचक सङ्केत है।

शक्ति के मुख्य नियम ये हैं:—

(१) शक्ति की स्थिति निरन्तर है (Persistence of Force).

(२) शक्ति के जितने सम्बन्ध हैं उनमें भी वह निरन्तर स्थिति वाली है। (Persistence of Relation among Forces).

(३) शक्ति का रूपान्तर होता है। परन्तु रूपान्तरित अवस्था में भी उसका भार बराबर रहता है (Transformation and Equivalence of Forces).

विद्युच्छास्त्र (Science of Electricity) इन नियमों को अटल प्रमाणों से सिद्ध करके दिखा रहा है। गति के नियम जैसे संसार के सभी पदार्थों में पाये जाते हैं वैसे ही शक्ति के नियम भी सर्वत्र पाये जाते हैं।

सवितृ-मण्डल, वायु-मण्डल, जीवधारी, मानसिक भाव और सामाजिक परिवर्तन—सभी में शक्तिके नियमों का निदर्शन विद्यमान है।

अब तक जो नियम लिखे गये वे प्रत्येक तत्त्व के पृथक् पृथक् नियम हैं। परन्तु दृश्य जगत् में, सृष्टि के समस्त पदार्थों में, ये सब तत्त्व अनेक प्रकार से मिले हुए दिखाई देते हैं। अतएव उन नियमों का जानना भी अत्यावश्यक है जो सब तत्त्वों से मिल कर संसार में व्याप्त हैं और जो संसार की स्थिति और नाश के कारण हैं।

परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया।

(Evolution and Dissolution.)

अर्थात्

संसार की उत्पत्ति और संसार के लय के नियम।

संसार में जितने परिवर्त्तन होते हैं सब प्रकृति

ओर गति के भिन्न भिन्न प्रयोगों के कारण होते हैं। मुख्य परिवर्त्तन दो प्रकार के हैं एक परिणाम-परिवर्त्तन ओर दूसरा लय-परिवर्त्तन। किसी वस्तु का स्पष्ट रूप में आना ओर उसके आकार में भिन्नता होना परिणाम-परिवर्तन का प्रभाव है ओर किसी वस्तु का नाश हो जाना लय-परिवर्त्तन का प्रभाव है। वृक्ष का उगना, उसके अवयवों का पुष्ट होना, उसमें पत्तियाँ, फूल ओर फल लगना—यह सब परिणाम-परिवर्त्तन का कार्य्य है। किसी वृक्ष का सूख कर नष्ट हो जाना लय-परिवर्त्तन का कार्य है।

समस्त संसार में ये दोनों परिवर्त्तन होते रहते हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु में भी ये, साथ ही साथ, होते रहते हैं। किसी वस्तु में जब तक परिणाम-परिवर्त्तन की अधिकता रहती है तब तक लय-परिवर्त्तन का प्रभाव नहीं दिखाई देता। जब परिणाम की न्यूनता हो जाती है—वह कम हो जाता है—तब लय-परिवर्त्तन की अधिकता दिखाई देती है। यहाँ तक कि इस अधिकता के कारण उस वस्तु का नाश भी हो जाता है। यदि समस्त संसार की दशा इन

परिवर्त्तनों की दृष्टि से देखी जाय तो ज्ञात होगा कि संसार में अभी परिणाम-परिवर्त्तन की अधिकता है। लय-परिवर्त्तन के चिह्न भी दिखाई देते हैं; परन्तु परिणाम-परिवर्त्तन की अधिकता होने से उसका प्रभाव इतना नहीं है कि संसार प्रलय को प्राप्त हो जाय। कभी न कभी ऐसा समय अवश्य आवेगा जब परिणाम-परिवर्त्तन की न्यूनता अथवा उसका अवसान होने से लय-परिवर्त्तन की अधिकता हो जायगी; और, अन्त में, उसके प्रभाव से संसार का नाश हो जायगा।

अब परिणाम-परिवर्त्तन और लय-परिवर्त्तन के लक्षण, थोड़े में, सुनिए—

परिणाम-परिवर्त्तन (Evolution).

परिणाम-परिवर्त्तन के व्यापक लक्षण ये हैं—

प्राकृतिक परिमाणुओं का एकत्र होना और उनकी गति का लोप होना। (Integration of matter and dissipation of its motion)

परिणाम-परिवर्त्तन दो प्रकार का है—साधारण

(Simple) और संयुक्त (Compound) यदि किसी वस्तु के प्राकृतिक अंश अपनी गति को छोड़कर एकत्र हो जायँ और उस वस्तु का रूपान्तर हो जाय, परन्तु प्रत्येक अंश का भिन्न भिन्न रूप न हो, तो वह साधारण परिणाम-परिवर्त्तन है। जैसे जल का बर्फ़ के रूप में परिणत हो जाना। यदि किसी वस्तु के अंश एकत्र होकर उस वस्तु का रूप भी बनावें और अपने अपने अंशों के भी भिन्न भिन्न रूप निर्म्मित करें तो वह संयुक्त परिणाम-परिवर्त्तन है। जैसे वृक्ष के अंश केवल वृक्ष के शरीर को ही नहीं बनाते; बल्कि उसकी डालियों, पत्तियों, फलों आदि को भी बनाते हैं। इस उदाहरण में एक परिवर्त्तन तो प्रधान है और कितने ही परिवर्त्तन गौण हैं। अर्थात् एक परिवर्त्तन का उद्देश तो वृक्ष को बनाना है और दूसरे परिवर्त्तनों का, जो वृक्ष के प्रत्येक अंश में होते हैं, उन अंशों को भिन्न भिन्न रूपों में लाना है। अतएव संयुक्त परिणाम-क्रिया में एक प्रधान (Main) परिवर्त्तन होता है और एक या एक से अधिक गौण (Secondary) परिवर्त्तन।

प्राकृतिक अंशों में से जब तक गति का लोप न होगा तब तक उनका एकत्र होना असम्भव है। इसलिए किसी वस्तु की परिष्कृति होने से यही अर्थ समझना चाहिए कि उसके अंशों में जो गति विद्यमान थी उसका लोप होगया है।

लय-परिवर्त्तन (Dissolution)

लय-क्रिया इस परिणाम से विपरीत है, अर्थात् परिणाम-क्रिया में किसी वस्तु के अंशों का सङ्गठन होता है और उनकी गति का लोप होता है। पर लय-क्रिया में उस वस्तु के अंशों का विश्लेष--पृथक्करण—और उनकी गति का सञ्चार होता है। जल से बर्फ़ बनना परिणाम-क्रिया का उदाहरण है और बर्फ़ से जल हो जाना लय-क्रिया का। बर्फ़ के जो अंश आपस में गति-लोप होने से एकत्र हुए थे, गति बढ़ने से वे अलग अलग होने लगे; यहाँ तक कि वे, फिर भी जल के रूप में होगये।

सूर्य्य की किरणें किसी शीत वस्तु पर गिरीं। उनके गिरने से उस वस्तु के अन्तर्गत जो गति थी

उसकी वृद्धि हुई। गति-वृद्धि होने से वह वस्तु फैलने लगी। यदि यह गति-वृद्धि बराबर—अक्षुण्ण—होती रही तो वह वस्तु, जो पहले एक दृढ़ (Solid)—ठोस—पदार्थ के रूप में थी, द्रव अथवा रस का रूप धारण कर लेगी। यदि यह वृद्धि और भी होती रही तो वह द्रव पदार्थ वायु (Gas) रूप में बदल जायगा। ठीक इसके विपरीत, अर्थात् इस वायु-रूप में गति कम होते ही, वह फिर द्रव (Liquid) रूप में आ जायगी। ज्यों ज्यों और भी गति कम होती जायगी त्यों त्यों वह रस या द्रव पदार्थ के रूप में बदलता जायगा। अन्त में वह फिर दृढ़ पदार्थ बन जायगा। इस उदाहरण में पहली क्रिया का नाम लय-क्रिया है और दूसरी का नाम परिणाम-क्रिया। अच्छा और आगे देखिए। उष्णता का परिमाण (Temperature) सदा समान नहीं रहता। इसलिए प्रत्येक वस्तु उष्णता के कम या ज़ियादह होने से कभी दृढ़ और कभी ढीली हो जाती है। यह समझना कि परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया पृथक् पृथक् समय में होती हैं, असत्य है। प्रत्येक

वस्तु में दोनों क्रियायें साथ ही साथ होती रहती हैं। दूसरे शब्दों में हम इसे इस तरह कह सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु से गति का लोप भी होता रहता है और उसमें गति का प्रवेश भी होता रहता है। ये दोनों परिवर्त्तन साथ ही साथ होते रहते हैं। बालू के कण से लगा कर पृथ्वी के गोले तक, सभी वस्तुओं में, ये दोनों परिवर्त्तन होते रहते हैं। अर्थात् इन सब पदार्थों से गरमी निकलती भी रहती है और उनमें आती भी रहती है। इनसे निकली हुई गरमी दूसरे पदार्थों में प्रवेश करती रहती है और दूसरे पदार्थों से निकली हुई गरमी इनमें प्रवेश करती रहती है। गरमी निकलने से तो ये वस्तुयें दृढ़ और घनी हो जाती हैं और गरमी आने से ढीली हो जाती हैं। जड़ पदार्थों में इन परिवर्त्तनों का प्रभाव बहुधा एक दम नहीं प्रतीत होता; क्योंकि उनका रूपान्तर शीघ्र नहीं होता। इन वस्तुओं में एक बादल ही ऐसी वस्तु है जिसमें इनका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

सूर्य्य की गरमी पहुँचने से बादल बिखर जाता

है। परन्तु जब वह ठण्डे पर्वतों के शिखर पर पहुँचता है तब उसमें बाहर से गरमी नहीं आने पाती। इस कारण वह भाफ बन जाता है और भाफ से पानी बन कर गिरने लगता है। इन क्रियाओं का प्रभाव जीव-धारियों पर बहुत जल्दी मालूम होने लगता है। इन दोनों क्रियाओं में, अर्थात् परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया में, एक अधिक और दूसरी कम होती है। इसलिए कहीं परिणाम-क्रिया प्रधान होती है और कहीं लय-क्रिया। प्रारम्भ में परिणाम-क्रिया प्रधान रहती है, बीच में दोनों एक दूसरे के पीछे रहती हैं, और अन्त में लय-क्रिया अधिक और परिणाम-क्रिया बन्द हो जाती है। मृत्यु के पश्चात्, जो काम पहले परिणाम-क्रिया ने किया था, विपरीत क्रम से उसका नाश हो जाता है। किसी वस्तु में परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया समान नहीं हो सकती। यह बात प्रायः असम्भव है। इसलिए बहुधा यही देखा जाता है कि किसी वस्तु में कभी परिणाम-क्रिया अधिक होती है और कभी लय-क्रिया।

लय-क्रिया के जो लक्षण हम कह आये हैं वे

निरन्तर पाये जाते हैं। वे उस क्रिया के सर्व-व्यापक लक्षण हैं। परन्तु परिणाम-क्रिया की पूरी परिभाषा यह है—

१—परिणाम-क्रिया वह है जिसमें प्राकृतिक अंशों का सङ्गठन (Integration of matter) और उनकी गति का लोप (Dissipation of motion) हो। इस क्रिया में प्रकृति अपनी (२) अलक्षित (Indefinite)—अनिश्चित—और (३) असम्बद्ध (Incoherent) एकजातीय अवस्था (Homogeneity) को छोड़ कर लक्षित (Definite), सम्बद्ध (Coherent) और भिन्नताविशिष्ट (Hetrogeneity) अवस्था को प्राप्त हो जाती है। साथ ही साथ उससे प्राकृतिक अंशों की (४) गति का भी ऐसा ही परिवर्त्तन (Parallel Changes in Motion) होता है।

इस परिभाषा का आशय यह है कि परिणाम-क्रिया में किसी वस्तु के अंश अपनी गति छोड़ने से एकत्र होते हैं। परिणाम से पहले, वस्तु रूप-लक्षण-रहित एक सी होती है। परिणाम प्रारम्भ होने से उसमें भिन्नता उत्पन्न होती है। इससे उसका रूप

और लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। जिस तरह प्रकृति के परमाणुओं का रूपान्तर होता है उसी तरह उसके अन्तर्गत गति का भी रूपान्तर होता है। इस परिभाषा को कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करना अत्यावश्यक है। परन्तु उदाहरण देने से पहले यह बताना ज़रूरी है कि संसार में जितनी परिणाम-क्रिया हो रही है उसके यही लक्षण हैं। ब्रह्माण्ड, सवितृ-मण्डल, पृथिवी, जीवधारी, समाज, भाषा, विज्ञान-शास्त्र, कलायें आदि—सब की रचना में यही परिणाम-क्रिया देख पड़ती है। यदि इनमें से प्रत्येक के सविस्तर उदाहरण दिये जायँ तो यह लेख एक पुस्तक बन जायगी। इस-लिए इनमें से हम एक ही दो के व्यापक उदाहरण देते हैं। उसी तरह दूसरे उदाहरण भी समझ लेने चाहिए।

पृथिवी-परिणाम का उदाहरण।

१—जो जल इस समय समुद्रों के रूप में पृथिवी के $\frac{3}{4}$ भाग में वर्त्तमान है वह अत्यन्त

प्राचीन काल में भाफ के रूप में था। ज्यों ज्यों पृथिवी की गति कम होती गई, वह भाफ जमती गई। यहाँ तक कि उसका अधिक भाग जम गया और बहुत थोड़ा भाग शेष रह गया। यह थोड़ा भाग भी जम जाता, यदि सूर्य्य के तेज के कारण परमाणुओं की गति में वृद्धि न होती। इस तरह समुद्र बने। पृथिवी का तल बनने में भी ऐसा ही परिवर्त्तन हुआ। पृथिवी पिघले हुए पदार्थ का पिण्ड-समूह (A Molten Mass of Matter) थी। गति की न्यूनता से उसके ऊपर का भाग सूख गया और वह एक पतली झिल्ली—पपड़ी—के रूप में हो गया। इस झिल्ली में स्थान स्थान पर छिद्र थे। यह झिल्ली भी पहले हिलती सी रही। परिवर्तन-क्रिया से यह दृढ़ होती गई। अब यह ऐसे दृढ़ और कठिन तल के रूप में हो गई है कि इसे बड़ी बड़ी प्राकृतिक घटनाओं से भी विशेष हानि नहीं पहुँचती। इस धरातल के बनने में पहली बात प्राकृतिक परमाणुओं का एकत्र होना है। दूसरी बात उनकी गति का लोप होना। इस प्रधान परिवर्तन के साथ दूसरे गौण परिवर्त्तन

भी होते हैं। प्रधान परिवर्त्तन से तो गोल धरातल बना, जिस पर जल और स्थल दोनों को स्थान मिला। परन्तु यह धरातल इतना ऊँचा और मोटा न हुआ जिस पर उपद्वीप बन सकें। जब तक धरातल बहुत मोटा और दृढ़ न हो तब तक उसका समुद्रों में विभक्त होना असम्भव है। इसी तरह पर्वत-श्रेणियों का बनना भी असम्भव है। जो धरातल शीतल और सङ्कुचित होता और धँसता गया उससे पहाड़ियाँ और पर्वत बनते गये। जब तक धसती हुई पृथिवी बहुत गहरी और मज़बूत न हो गई तब तक उच्च पर्वत-श्रेणियों का बनना असम्भव था।

इस उदाहरण में दो बातें दिखाई गई हैं—एक तो प्रधान परिणाम-क्रिया से पृथिवी के गोले के ऊपर धरातल बनाना और दूसरे धरातल के अंशों का किसी रूप-विशेष में परिवर्त्तन होना—जैसे पर्वत आदि। पिछला परिवर्त्तन गौण है और पहला प्रधान। इसलिए पृथिवी संयुक्त परिणाम-क्रिया वाली है, साधारण परिणाम वाली नहीं। अर्थात् इस

परिणाम-क्रिया में प्रधान और गौण परिवर्त्तन दोनों विद्यमान हैं।

२—पृथिवी किसी समय पिघले हुए गोले के रूप में थी, यह सभी भूतत्त्ववेत्ता मानते हैं। प्रारम्भ में वह गोला एक रूप का था, अर्थात् उसके आकार में भिन्नता न थी। तप्त द्रव्यों में आन्तरिक भ्रमण-शक्ति रहती है। पृथिवी के गोले में भी उस दशा में वह शक्ति विद्यमान थी। कारण, उसकी उष्णता का परिमाण एक सा था। वायु, जल और दूसरे तत्त्व, जो प्रखर उष्णता के कारण वायु के रूप में हो जाते हैं, इस पृथिवी के गोले के चारों तरफ़ विद्यमान थे। गरमी निकलने से गोले का ऊपरी भाग ठण्डा होकर भीतर के तप्त भाग से जुदा हो गया। इस भाग के ठण्डे होने से जो तत्त्व आकाश में व्याप्त थे वे ज़ल और वायु के रूप को प्राप्त हो गये। इस प्रकार भिन्नता का विकाश होने लगा और जिन भागों में शीत अधिक था वहाँ जल जमने लगा; जैसा कि ध्रुव प्रदेशों में होता है। सारांश यह कि उष्णता की अधिकता और न्यूनता के कारण

पृथिवी की बनावट में भिन्नता प्रतीत होने लगी। भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार पृथिवी के तल एक के ऊपर एक रक्खे हुए हैं। धीरे धीरे ये तल मोटे होते गये। इससे पृथ्वी के आकार में भिन्नता बढ़ती गई। पृथिवी के केन्द्र में आकर्षण-शक्ति है। उसका प्रभाव पृथिवी-तल पर पड़ता रहता है। इस कारण भी भिन्नता में अधिकता होती गई। इन दोनों कारणों से पृथिवी के तल में तरह तरह की धातुयें और दूसरी वस्तुयें उत्पन्न हो गईं। भूगर्भ-शास्त्र से यह भी ज्ञात होता है कि पृथिवी का तल अनेक प्रकार से बढ़ता जाता है। जो पर्वत इस समय सब से ऊँचे हैं वे सबसे छोटे थे। अमेरिका का एन्डीज़ और भारत का हिमालय-पर्वत और सब पर्वतों से नवीन हैं। इसी तरह समुद्रों की गहराई में भी परिवर्त्तन होता गया है। यहाँ तक कि पृथिवी के आधार में स्थान स्थान पर भिन्नता हो गई और देश देश के जल-वायु में भी अन्तर हो गया।

३—ज्यों ज्यों पृथिवी ठण्ढी होती गई और उसका तल कड़ा होता गया त्यों त्यों उन देशों की

उष्णता के परिमाण में भी, जो सूर्य के सामने और सूर्य से दूर हैं, अन्तर होता गया और उन देशों में भिन्नता भी होती गई। अर्थात् कई देशों को ऐसी दशा प्राप्त हो गई जहाँ सदैव बर्फ़ जमी रहती है; कई देशों में सदैव गरमी ही बनी रहती है। कई देश ऐसे भी बन गये जहाँ गरमी और सरदी क्रमशः होती है। संयुक्त परिणाम-परिवर्त्तन के ये प्रधान लक्षण हैं—पहले पृथिवी के गोले के तल का बनना; फिर उस धरातल की वस्तुओं में भिन्नता होना; तदनन्तर उन वस्तुओं के प्रत्येक अंश का पृथक् पृथक् रूप होना और उन अंशों का आपस में भिन्न भिन्न होना। केवल अंशों में भिन्नता होने से ही काम नहीं चलता। किन्तु उस भिन्नता में रूप की स्पष्टता का होना भी आवश्यक है। गीली मिट्टी का बना गोला ढीला होता है। उसमें पूरी गुलाई साफ़ साफ़ नहीं देख पड़ती। अर्थात् वह कुछ चिपटा होता है। परन्तु सूखने पर उसमें दृढ़ता और रूप-विशेषता आ जाती है। इसी तरह पृथिवी-तल ज्यों ज्यों कड़ा होता गया, उसमें भिन्न भिन्न स्थल निश्चित रूप

से प्रतीत होने लगे। जब पृथिवी-तल पतला था तब न ऊँचे पर्वत थे, न गहरे समुद्र थे और न जल-प्रवाह के साधन ही थे, जिससे बड़ी बड़ी नदियाँ ऊँचे स्थलों से गिर कर नीचे के स्थानों में दूर तक बहती रहें।

४—अब तक जो कुछ लिखा गया वह इस सिद्धान्त का प्रमाण है कि वस्तुओं का परिणाम उनके प्राकृतिक अंशों के सङ्कठन और उनकी गति के लोप से होता है। अब यह बताना है कि जैसे सङ्कठन से परिवर्त्तन होता है वैसे ही गति के सञ्चार से भी परिवर्त्तन होता है। जिस समय पृथिवी का गोला पिघला हुआ था उस समय वायु-मण्डल की गरमी से ऊपर जाने वाली लहरें और वे लहरें जो पिघली हुई द्रव वस्तु के नीचे की ओर बहने से उत्पन्न होती थीं, थोड़े स्थान में थीं और लगभग एक ही सी थीं। बहुत समय के पश्चात् जब पृथिवी-तल कड़ा और ठण्डा हो गया तब सूर्य के तेज से पृथिवी के उष्ण और शीत देशों के ताप में भिन्नता होने लगी। ध्रुवप्रदेशों से मध्य-रेखा

तक एक प्रकार की वायु बन गई और मध्य-रेखा से ध्रुवों तक दूसरे प्रकार की। इसी तरह, दूसरी तरह की कितनी ही वायुयें, जैसे व्यापार-सञ्चारक वायु (Trade Wind), मानसून इत्यादि। ऋतुओं का प्रादुर्भाव भी इसी प्रकार हुआ है। जल-तरङ्गों को भी वायु-तरङ्गों के सदृश भिन्न भिन्न रूप प्राप्त हो गया।

पृथिवी-परिणाम-सम्बन्धी इस उदाहरण में वे सब लक्षण दिखा दिये गये हैं जो परिणाम-क्रिया की परिभाषा में वर्णन किये गये थे।

अब इन्हीं लक्षणों को हम समाज के सम्बन्ध में दिखाते हैं—

सामाजिक परिणाम का उदाहरण।

१—प्रारम्भ में असभ्य मनुष्य अपने कुटम्ब को लिये घूमते रहते हैं। फिर वे जातियों या समूहों में बँट जाते हैं। तब वे दल बाँध कर रहते हैं और किसी को अपना मुखिया या राजा बना लेते हैं। इस कारण पहले जो अलग अलग रहने की अनियमता मनुष्यों

में होती है जाती रहती है और समाज सङ्कुठित हो जाता है।

२—असभ्य अवस्था में प्रत्येक मनुष्य सभी काम आप ही करता है। आप ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने की चेष्टायें किया करता है। अर्थात् शिकार खेलना, मछली पकड़ना, औज़ार और हथियार बनाना, झोपड़ी बनाना, लड़ना इत्यादि कार्य्य प्रत्येक मनुष्य करता है।

लड़ाई के अवसरों पर ये असभ्य मनुष्य परस्पर मिल जाते हैं। परन्तु यों वे हमेशा अलग अलग ही रहते हैं। एक दूसरे से कुछ सरोकार नहीं रखते। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है, इनके कामों में—कर्तव्यों में—भिन्नता आती जाती है। कोई कुछ काम करने लगता है, कोई कुछ। उनमें से एक राजा भी हो जाता है। धर्म-संस्थायें, लौकिक प्रथायें, सामाजिक नियम इत्यादि बन जाते हैं। जाति-भेद होने लगते हैं। तरह तरह के पेशे रायज होते हैं। अनेक तरह की भिन्न भिन्न चेष्टायें होने लगती हैं।

३—प्रारम्भ में, जब असभ्य मनुष्य जगह जगह घूमा करते हैं, उनका न कोई स्थान होता है, न कहीं घर होता है और न कोई आपस में सम्बन्ध ही होता है। सभ्यता फैलने से स्थान की सीमायें बँधती हैं। राजा प्रजा के सम्बन्ध की सृष्टि होती है। जाति-भेद की नींव पड़ती है। पुजारी पैदा होते हैं। हिन्दुस्तान में अब कितने ही जाति-भेद और रहन-सहन के तर्ज़ पाये जाते हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है ये भेद अधिकाधिक स्पष्ट होते जाते हैं।

४—पहले लड़ाई का कोई नियम नहीं रहता। लोग सिर्फ़ लड़ना ही जानते हैं। असभ्य मनुष्य मिल कर एकदम हमला करते हैं। सभ्यता बढ़ने पर पलटनें बनती हैं। तोप-ख़ाने, सवार और पैदल-पलटनों की सृष्टि होती है। लड़ने के नियम बनाये जाते हैं। जनरल, कप्तान, सूबेदार आदि नियत होते हैं। कमसरियट का प्रबन्ध होता है। व्यूह बनाये जाते हैं। राज-नीति में शासन और प्रबन्ध की व्यवस्था में उपयोगी सुधार किये जाते हैं। पहले पहल व्यापार का रूप बहुत सङ्कुचित होता

है। चीज़ों की अदला-बदल ही से उनका व्यापार होता है। धीरे धीरे व्यापार के उत्तम नियम बन जाते हैं। तरह तरह का व्यापार होता है। जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वही तैयार की जाती है। ब्रह्माण्ड, सवितृ-मण्डल, जीवधारी आदि में भी ये लक्षण, इसी तरह, घट सकते हैं।

परिणाम-क्रिया का मूलाधार।

यह बताया जा चुका है कि परिणाम-क्रिया क्या चीज़ है और उसके नियम क्या हैं। परन्तु यह नहीं बताया गया है कि परिणाम-क्रिया का आदि कारण क्या है? प्राकृतिक अंशों का सङ्गठन क्यों होता है? गति का लोप क्यों होता है? एक-जातीय वस्तु में भिन्नता क्यों उत्पन्न होती है? यह भिन्नता स्पष्ट रूप में क्यों दिखाई देती है? अच्छा, अब इन सब प्रश्नों का उत्तर लीजिए—

" परिणाम-क्रिया का मूलाधार शक्ति है। जितने परिवर्त्तन होते हैं, शक्ति ही उनका मूल कारण है। शक्ति के विविध रूप और अनेक भेद हैं। उनके

आपस में मिलने से अनेक प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं। शक्ति-प्रयोग मुख्यतः दो प्रकार का है (१) सफल और (२) निष्फल। सफल प्रयोग भी दो प्रकार का है—(१) स्थायी और (२) अस्थायी। यदि किसी वस्तु के परमाणु थोड़ी गति के पश्चात् वैसे ही बने रहें तो उसे अस्थायी प्रयोग समझिए। यदि परमाणुओं का रूपान्तर हो जाय तो स्थायी प्रयोग समझना चाहिए।

स्थायी सफल शक्ति-प्रयोग के भी दो भेद हैं—(१) अदृश्य और (२) दृश्य। अदृश्य परिवर्त्तन वे हैं जो परमाणुओं में होते हैं, जिससे सङ्गठन अथवा विश्लेषण होता है और जिस कारण उनके धर्म में भिन्नता आती है। दृश्य परिवर्त्तन वे हैं जो किसी वस्तु के परमाणुओं को उस वस्तु से पृथक् करके कहीं और एकत्र कर दें। स्थायी शक्ति बनी रहती है; पर अस्थायी निकल जाती है। स्थायी के दोनों भेद एक दूसरे के विपरीत काम करते हैं। स्थायी सफल-शक्ति के अदृश्य प्रयोग से, वस्तु के,

परमाणुओं में, आन्तरिक परिवर्त्तन होता है और दृश्य से उनका बाह्य रूप बदल जाता है।

किसी वस्तु के अंशों के परिवर्त्तन का नियम।

वस्तु जब एक रूप में रहती है तब उस दशा में समानभारता (Equilibrium) का अभाव रहता है। किसी लकड़ी को उसके एक सिरे के बल खड़ा करो। वह हमेशा डगमगाती रहेगी और उसके गिरने की सम्भावना बनी रहेगी। यह अवस्था समानभारता के अभाव की है। यदि किसी लकड़ी का सिरा बाँध कर लटका दिया जाय तो उस लकड़ी में समानभारता न रहेगी।

शक्ति की असमानभारता के इस उदाहरण में असमानभारता प्रत्यक्ष दिखाई देती है। परन्तु एक रूप वाली वस्तु के भीतर जो इसी तरह की शक्तियों की असमानता होती रहती है वह दिखाई नहीं देती। पर उसका असर यह होता है कि उस वस्तु के भीतर के अंशों की स्थिति एकसी नहीं रहती।

वह पलटती रहती है। किसी जलती हुई वस्तु का एक टुकड़ा लीजिए। उसमें एकसी गरमी चाहे कितनी ही क्यों न हो उसके भीतर एक सी गरमी नहीं रह सकती। भीतर की अपेक्षा बाहर की गरमी जल्द निकल जाती है, और, बाहर और भीतर की उष्णता में अन्तर हो जाता है। अर्थात् एक सी दशा नहीं रह सकती। भिन्नता होना अपरिहार्य्य है। सारांश यह कि कोई वस्तु एक दशा में नहीं रह सकती। क्योंकि एक दशा में शक्ति की असमान-भारता (Want of Equilibrium) होती है जिससे उस दशा के परिवर्त्तन की प्रेरणा होती है। और परिवर्त्तन पाकर उसमें भिन्नता आ जाती है।

पृथिवी का गोला पहले जलता हुआ था और उसकी दशा एक सी थी। परन्तु वह एक सी दशा नहीं रही। बाहरी भाग ठण्डा होता गया और उसे तरह तरह की भिन्नता प्राप्त होती गई। जो चीज़ एक रूप की है उसमें शक्ति की असमानता रहती है। इस कारण उसमें परिवर्त्तन आरम्भ होकर भिन्नता आ जाती है। यह भिन्नता उस वस्तु के

एक रूप में ही नहीं होती; किन्तु उन अंशों में भी होती है जिनसे वह बनी होती है। हर अंश का रूप भिन्न हो जाता है—वैसा ही जैसा उस समस्त वस्तु का हो गया है। चीज़ों का एक रूप से अनेक रूपों में हो जाना, इस शक्ति का ही प्रभाव है।

अब तक जो कुछ लिखा गया वह इस बात का प्रमाण है कि शक्ति की असमानता से परिणाम-क्रिया होती है। अब यह लिखा जाता है कि समान-शक्ति के आघात का प्रभाव वस्तु के अंशों पर—घटक द्रव्यों पर—भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। सूर्य्य की किरणें चारों तरफ़ एक सी निकलती हैं। उनमें से कुछ किरणें चन्द्रमा पर पड़ती हैं। चन्द्रमा के धरातल के अनेक कोणों से ये किरणें चमकती हुई पृथिवी पर पड़ती हैं। जो किरणें पृथिवी पर आती हैं वे अनेक प्रकार से फैल जाती हैं, अर्थात् कुछ आकाश में फैल जाती हैं और कुछ पदार्थों पर। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रकृति के साथ शक्ति का सम्पर्क होने से वह अनेक तरह की और अनेक तरफ़ जाने वाली शक्तियों में बँट जाती है।

एक मोमबत्ती जलाइए। पहले उसका ताप बढ़ने लगेगा उससे बत्ती के परमाणुओं का परिवर्त्तन होगा। बाहर की गरमी पहुँचने से उसके भीतर कई चीज़ें बनने लगेंगी। जैसे कोयला (Carbon), जल आदि। इन वस्तुओं के बनने के साथ ही साथ गरमी भी पैदा होगी। रोशनी भी पैदा होगी। गरम गैस का धुवाँ ऊपर को उठेगा। चारों तरफ़ की हवा में लहरें भी पैदा होंगी। इस प्रकार के प्रत्येक परिवर्त्तन से और और परिवर्त्तन भी होने लगेंगे। कोयला किसी और चीज़ से मिल जायगा अथवा सूर्य की गरमी से किसी पौधे की पत्तियों में चला जायगा। पानी के कारण उस जगह की हवा में कुछ परिवर्त्तन हो जायगा। यदि गरम वायु का धुँवा किसी ठण्ढी चीज़ से मिलेगा तो वह जम जायगा। उत्पन्न हुई गरमी से मोम पिघल जायगा। जो प्रकाश पैदा होगा वह बहुत सी वस्तुओं पर गिरेगा, और विविध रङ्ग उत्पन्न हो जायँगे। इस प्रकार अनेक तरह के कार्य एक ही कारण से होंगे। देखिए, पृथिवी की घटती हुई गरमी से अनेक कार्य

उत्पन्न हो गये। अर्थात् कितने ही सूक्ष्म तत्त्व प्रत्यक्ष रूप में आ गये। यथा—पृथिवी और पानी आदि का बनना। पृथिवी की उष्णता कम होने से वह सिकुड़ती जाती है; क्योंकि उसके भीतर का जलता हुआ गोला कम होता जाता है। बाहर का धरातल बड़ा होने से वह गोला धसकता जाता है। सेब सूखता जाता है और उसके ऊपर के—छिलके में सिकुड़न पड़ती जाती है। पृथिवी की सतह का भी ऐसा ही हाल है। ज्यों ज्यों पृथिवी ठण्ढी होती जाती है त्यों त्यों उसके ऊपर का ढक्कन मोटा होता जाता है। जब यह ढक्कन सिकुड़ता है तब पहाड़ियाँ और पर्वत बन जाते हैं। इस लिए जो पहाड़ पीछे बने हैं वे अधिक ऊँचे ही नहीं, लम्बे भी हैं। इस उदाहरण से मालूम हो जायगा कि केवल एक कारण से, अर्थात् गरमी के लोप से, पृथिवी के धरातल में कितनी भिन्नता आ गई है।

अब तक जो कुछ लिखा जा चुका उससे यह सिद्ध हुआ कि एक अवस्था से भिन्न अवस्था होने के क्या कारण हैं। इसके दो कारण बताये गये हैं—

एक तो शक्ति की असमानभारता; दूसरा, एक कारण से अनेक कार्यों का होना। अब भिन्नता कैसे स्पष्ट होती है, यह सुनिए—

किसी पेड़ पर नज़र डालिए। उसकी सूखी और मुरझाई हुई पत्तियों को हवा उड़ा ले जाती है और कोमल और हरी पत्तियाँ अपनी जगह पर लगी रहती हैं। सूखी पत्तियाँ उड़ कर कहीं कहीं जमा हो जाती हैं। हवा की शक्ति सूखी और गीली पत्तियों पर एक ही सी थी। परन्तु सूखी पत्तियाँ गिर गईं और हरी लगी रहीं। गेहूँ से भूसी बनाने में भी पवन का गेहूँ और उसके छिलके पर एकसा प्रभाव पड़ता है। पर दोनों चीज़ें अलग अलग हो जाती हैं। किसी चीज़ को कुचल कर हाथ में लीजिए और हवा में उड़ाइए। उसकी भारी डलियाँ ज़मीन पर एक जगह गिरेंगी। उससे कुछ छोटी डलियाँ कुछ दूरी पर जा गिरेंगी और पिसा हुआ बारीक अंश हवा में उड़ जायगा। अगर कुछ कङ्कड़, कुछ बालू—रेत—और कुछ धूल—तीनों को मिला कर हवा में छोड़ें तो कङ्कड़ एक जगह गिर कर

इकट्ठे होते जायँगे; रेत कुछ दूरी पर गिर कर एक जगह इकट्ठी होगी, और धूल हवा में उड़ जायगी। इन दृष्टान्तों का मतलब यह है कि कुछ शक्ति ऐसी है जो चीज़ों को अलग अलग कर देती है।

समान-भारता।

लुढ़कती हुई गेंद कुछ दूर जाकर ठहर जाती है। बादलों से पानी गिरता है। वह नदियों और नालियों से बह कर ऐसी जगह ठहर जाता है जहाँ से वह और नीचे नहीं जा सकता। अर्थात् हर चीज़ की गति अपने विश्राम की तरफ़ है। किसी लट्टू को फिराइए। उसकी कील में डोरी बाँध कर फेंकिए। इससे तीन चालें पैदा होंगी। जिस जगह वह फिराया गया है उस जगह से वह दूर जा गिरता है। यह पहली चाल हुई। अपनी कील पर उसमें झूले की सी चाल भी है। यह उसकी दूसरी चाल है। तीसरी चाल वह है जिससे वह फिरता है। पहली दोनों चालें इस तीसरी चाल के अधीन हैं। तीसरी चाल निरन्तर जारी रहती है। पर

पहली दो चालें, कुछ देर के बाद, बन्द हो जाती हैं। वह शक्ति जो मेज़ पर फिराते ही लट्टू को दूर ले जाती है, हवा के प्रभाव से और ख़ास कर धरातल की असमानता से, लोप हो जाती है। वह शक्ति जो कीली की वजह से झूले की सी चाल पैदा करती है तीसरी चाल के धरातल के कारण जाती रहती है। सिर्फ़ तीसरी चाल रह जाती है, जिस पर हवा का दबाव पड़ता है और कीली की टक्कर लगती है। इस चाल में कभी कभी लट्टू खड़ा—स्थिर—दिखाई देता है। गति की इस अवस्था का नाम गति-समानता है। इससे यह नतीजा निकला कि एक वस्तु में जो अनेक चालें होती हैं उनके ठहरने की समानता अलग अलग होती है—अर्थात् जो चाल कम होती है या जिसमें अधिक रुकावट होती है वह पहले बन्द हो जाती है। जो चाल बड़ी होती है या जिसमें कम रुकावट होती है वह पीछे बन्द होती है। दूसरी बात यह है कि जब उस वस्तु के अंशों की चालें एक दूसरी से ऐसी मिल जाती हैं कि उनमें बहुत कम रुकावट

हो तो गति की स्थिति मालूम होने लगती है। तीसरी बात यह है कि यह गति-स्थिति वास्तव में विराम को पहुँच जाती है। पृथिवी की ओर छोटी चालें तो, लट्टू की चाल के सदृश, नष्ट हो गई हैं; किन्तु वह अपनी धुरी पर लट्टू के समान घूमती ही है। हाँ, उसकी धुरी की चाल में भी कमी होती जाती है। विज्ञानवेत्ताओं ने लिखा है कि किसी समय अपनी धुरी के चारों तरफ़ की पृथिवी की चाल ज्वार-भाटे की लहरों के कारण जाती रहेगी। इस तरह धीरे धीरे जब पृथिवी की सब गरमी निकल जायगी तब पृथिवी की चाल बिलकुल बन्द हो जायगी। सारांश यह कि शक्तियों के कारण परिणाम-क्रिया होती है। पहली बात यह है कि एक रूप की वस्तु में होने वाली शक्ति की असमान स्थिति से उस वस्तु में भिन्नता होती है। दूसरी यह कि शक्ति-प्रयोग से अनेक प्रकार के कार्य पैदा होते हैं और चीज़ों में पृथक्ता आ जाती है। तीसरी बात यह है कि जब चालें एकसी मिल जाती हैं तब विरामता आ जाती है।

लय-क्रिया (Dissolution)

जब किसी चीज़ की भीतरी शक्तियाँ अपना काम करते करते विराम पर पहुँच जाती हैं तब उस चीज़ में अपनी ताक़त नहीं रहती। चारों तरफ़ विद्यमान बाहर की चीज़ों का असर वस्तु-विशेष पर सदा ही होता रहता है। इस कारण उस वस्तु-विशेष की अवशिष्ट भीतरी चाल की वृद्धि होती है। इस वृद्धि के कारण उस चीज़ का कभी न कभी नाश हो जाता है। किसी वस्तु के नाश होने का काल उसके आकार, गुण आदि दशाओं पर अवलम्बित है। इन कारणों से कोई वस्तु जल्दी नष्ट होती है और कोई लाखों वर्ष पीछे। इसका उदाहरण लीजिए। जब पृथिवी की सब चालें विराम को पहुँच जायँगी तब उसके बाहर की चीज़ों का असर उन पर पड़ता रहेगा। उनका असर पड़ने से पृथिवी का कभी न कभी बिलकुल नाश हो जायगा। पृथिवी के बाहर एक ऐसी शक्ति है जो पृथिवी को

सूर्य्य तक ले जायगी। यह शक्ति खींचते खींचते पृथिवी को सूर्य्य में मिला देगी।

सारांश।

प्रकृति और गति का आपस में अनेक प्रकार मिलने से परिवर्त्तन होता है। परिवर्त्तन दो प्रकार के हैं—एक परिणाम-परिवर्त्तन, दूसरा लय-परिवर्त्तन। पहले परिवर्त्तन से संसारोत्पत्ति होती है और दूसरे से उसका नाश।

परिणाम-परिवर्त्तन के लक्षण ये हैं—

(१) प्राकृतिक अंशों का सङ्गठन होना और उनकी गति का लोप होना।

(२) रूप-लक्षण-रहित एक-जातीय वस्तु का भिन्नता प्राप्त करना।

(३) इस भिन्नता का रूप स्पष्ट होना।

(४) जैसे प्राकृतिक अंशों के रूपान्तर होते हैं वैसे ही गति के अंशों के भी होते हैं। वस्तुओं में कितने ही परिवर्त्तन साथ ही साथ हुआ करते हैं।